International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 6; November 2016; Page No. 24-25

योग : पुरूष का प्रकृति से वियोग

[1] शशिकान्त मणि त्रिपाठी, [2] डॉ0 उपेन्द्र बाबू खत्री, [3] डॉ0 अखिलेश कुमार सिंह

[1] शोधार्थी पी.एच.डी. (योग), सॉची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत।
[2] सहायक प्राध्यापक योग विभाग, सॉची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत।
[3] सहायक प्राध्यापक आयुर्वेद विभाग, सॉची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
'योग' शब्द संस्कृत भाषा के 'युज्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'जोड़ना' अर्थात् अपने को किसी से जोड़ना। पाणिनिगण पाठ मे तीन युज धातु है। दिवादिगणीय 'युज' धातु का अर्थ है– समाधि। रूंधादिगणीय 'युज्' धातु का अर्थ है– युजिर योगे अर्थात् जोड़ना और चुरादिगणीय 'युज्' का अर्थ वषीकृतस्य मनसः अर्थात् मन को वष में करना ही मन का संयमन है। युज् धातु से योग शब्द की उत्पत्ति के आधार पर योग का अर्थ जोड़ना, समाधि और मन का संयमन है। यह सारा जगत जड़ और चेतन का योग है। प्रकृति और पुरूष के संयोग से सृष्टि होती है। प्रकृति के तीन गुण सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण तथा गुणातीत पुरूष का जब योग होता है तब सृष्टि का आरम्भ होता है।
यह जगत दो विजातीय तत्वों का योग है। त्रिगुणात्मक प्रकृति और गुणातीत पुरूष का संयोग ही सृष्टि का कारण बनता है। प्रकृति परिवर्तनषील है और पुरूष अपरिवर्तनषील। प्रकृति जड़ है और पुरूष चेतन। यह सृष्टि जड़ और चेतन का योग है। यही माया है, जो नही है, परन्तु होने जैसा लगता है। जिसका योग नही हो सकता परन्तु योगाभास हो रहा है।

मूल शब्दः योग, पुरूष, प्रकृति, जीव, ब्रह्म, माया, चित्तवत्ति।

प्रस्तावना
इस मायावी जगत का जीव पर ऐसा प्रभाव है कि वह अपने स्वरूप ब्रह्म (परमात्मा) को भूलकर नाम–रूपात्मक जगदादिवृत्ति को ही अपना स्वरूप मानने लगता है। जगताध्यास को वास्तविक सत्ता मानने लगता है। जो वास्तव मे नही है, परन्तु होता हुआ प्रतीत हो उसे ही माया कहते है। जगत के ज्ञान ने जीव की चित्त वृत्तियों का निर्माण किया है। किसी भी प्रकार का ज्ञान अन्तःकरण चतुष्टय– (मन,बुद्धि, चित्त व अहंकार) और बाह्य करण (पांच ज्ञानेन्द्रियॉं) के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। ज्ञान चित्तवृत्तियों का निर्माण करता है। यह चित्तवृत्तात्मक ज्ञान ही जगत में जीव और ब्रह्म के बीच की बाधा है। जीव का अपने स्वरूप ब्रह्म से वियोग का कारण जगत का चित्तवृत्तात्मक ज्ञान है।
जैव की चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है। जब चित्त की सारी वृत्तियॉं निरूद्ध हो जाती है तब द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसी को महर्षि पतंजलि कहते हैः–

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः (यो.सू.1/2)

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।
गीता मे भगवान श्री कृष्ण कहते है–

तं विद्याद् दुःख संयोगवियोगं योग संज्ञितम् (भ.गीता 6/23)

अर्थात् दुःख रूप संसार के संयोग से वियोग योग है।
जब चित्त की सारी वृत्तियॉं निरूद्ध है तब दृष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। योग दर्शन में महर्षि पतंजलि कहते हैं

''तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'' (यो.सू. 1/3)

अर्थातः– तब द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित होता है।
दृष्टा का स्वरूपस्थ होना ही योग का परम लक्ष्य है। इसे ही मोक्ष, कैवल्य, निर्बीज समाधि आदि नामों से जाना जाता है।
द्रष्टा के स्वरूपस्थिति के लिए योग दर्शन में अष्टांग योग का वर्णन है।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार
धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि।। (यो.सू.2/29)

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि इन आठ अंगों का वर्णन किया गया है। इसे अष्टांग योग कहते है।
अष्टांग योग का परम लक्ष्य समाधि है। चित्त की सारी वृत्तियों के निरूद्ध होने के पश्चात् ही द्रष्टा को अपने स्वरूप का बोध होता है। स्वरूप बोध से पूर्व जीव जगत और जगत के ज्ञान को ही अपना रूप मानता रहता है। माया के वशीभूत जीव जगत में अपने को और अपने में जगत को देखता रहता है। इसी को गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस में लिखते हैः–

भूमि परत भाड़ावर पानी।
जिमि जीवहि माया लपटानी।। (किष्किन्धाकाण्ड)

जैसे वर्षा का जल भूमि के सम्पर्क में आते ही मिट्टी के गुण धर्म को धारण कर लेता है वैसे ही जीव माया के सम्पर्क में आकर अपने स्वरूप को भूल जाता है। द्रष्टा की स्वरूप विस्मृति ही दुःख का कारण है। इस कारण का निवारण योग है। योग दुःख का आभाव है। द्रष्टा की चित्तवृत्तियों से निवृत्ति के पश्चात् योग घटित होता है।
सांख्य शास्त्र में कहा गया हैः–

पुरूष प्रकृत्योतियोगेऽपि योग इत्यभिधीयते।।

अर्थात् प्रकृति–पुरूष का पृथकत्व स्थापित कर पुरूष का स्वरूप में स्थित हो जाना योग है। दूसरे शब्दों में पुरूष का प्रकृति से वियोग योग है। योग दर्शन में वर्णित योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः प्रकृति से पुरूष

का वियोग ही योग है। प्रकृति से पुरूष का संयोग चित्तवृत्ति का निर्माण करता है। और चित्तवृत्तियॉ द्रष्टा के स्वरूपस्थ होने की बाधा है। द्रष्टा की स्वरूप स्थिति ही योग है। इस स्थिति मे समत्व का बोध होता है। भगवान श्रीकृष्ण गीता मे अर्जुन से कहते हैः–

योगस्थ कुरू कर्माणि संगंत्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धो समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। (भ.गीता 2/48)

अर्थात् हे धनंजय तू योग मे स्थित हो कर कर्म फल को त्याग कर तथा सिद्धि असिद्धि में सम हो कर कर्म कर यह समता ही योग है। यह समत्व योग चित्त की सारी वृत्तियो के निवृत्त होने के पश्चात् ही प्राप्त होता है। प्रकृति और पुरूष के संयोग से नही वरन प्रकृति से पुरूष का जब वियोग होता है और पुरूष अपने स्वरूप में स्थित होता है। तब इस समत्व योग की प्राप्ति होती है। योग शिक्षा नही वरन विधा है जो मुक्ति प्रदान करे– ''सा विद्या या विमुक्तये''
चित्तवृत्तात्म ज्ञान बन्धनकारी है। प्रकृति और पुरूष का योग बन्धनकारी है। यह ज्ञान संस्कारों का निर्माण करती है। संस्कारों के कारण ही जीव कर्मफल को भोगने के लिए जन्म–मरण के चक्र में भ्रमण करता है। इस भाव चक्र से मुक्ति के लिए निष्काम कर्म की आवश्यकता है। निष्काम कर्म किया नही जाता जब समत्व योग की प्राप्ति होती है तब निष्काम कर्म होना ही कर्म की कुशलता है। इसको भगवान श्रीकृष्ण गीता में इस प्रकार कहते हैः–

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकत दुष्कृते।
तस्माद्योगाय युजस्व योगः कर्मसुकौशलम्।। (भ.गीता 2/50)

अर्थात् बुद्धि से युक्त मनुष्य संसार के सुकृत और दुष्कृत दोनो प्रकार के कर्मों में आसक्ति को त्याग देता है। ऐसे अनासक्त कर्म का होना ही कर्म की कुशलता है और कर्म की कुशलता ही योग है।
अनासक्त कर्म या निष्काम कर्म द्रष्टा के स्वरूप बोध के पश्चात् होता है। जब किसी भी प्रकार के कर्म में कर्ता भाव तिरोहित हो जाता है तब निष्काम कर्म होता है। कर्म का होना मुक्ति और कर्म का किया जाना बन्धनकारी होता है। योग वह विधा है जो दुःखों से पूर्णतया मुक्ति दिलाये। गीता मे भगवान श्रीकृष्ण ने कहा हैः–

तं विद्याद् दुःखसंयोग वियोग योगसंज्ञितम्।। (भ.गीता 6/23)

सभी प्रकार के दुःखों से मुक्ति आत्म दर्शन के पश्चात् हो जाती है। आत्मा साक्षात्कार करना योग का परम लक्ष्य है। मनुस्मृति में कहा गया हैः–

ध्यान योगेन सम्पश्यद्गतिस्यान्तरात्मनः।। (मनुस्मृति 16/73)

अर्थात् ध्यान योग से भी आत्मा को जाना जा सकता है। ध्यान तब घटित होता है। जब चित्त सभी प्रकार की वृत्तियों से निवृत्त हो जायेः–

ध्यानं निर्विषयं मनः।।
एकत्वं प्राण मनसोरिन्द्रियाणां तथैव च।
सर्व भाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते।।(मैत्रायण्युपनिषद 6/25)

अर्थात् प्राण, मन व इन्द्रियों का एक हो जाना, ब्राह्य विषयों से विमुख होकर इन्द्रियों का मन मे और मन का प्राण में लय हो जाना योग है।
याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसारः–

संयोगो योग इत्यक्तो जीवात्मनो परमात्मनो।।
अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा का मिलन योग है।

लिंग पुराण के अनुसारः–

योग निरोधो वृत्तेस्तु चित्तस्य द्विज सत्तमा।।

अर्थात् चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध हो जाना ही योग है। प्रकृति और पुरूष का योग जगत है। जो जगत में अपने को और अपने में जगत को देखे वह जीव है द्रष्टा जब वृत्ति सारूप्यता ग्रहण कर लेता है तब जीवात्मा बन जाता है और जब सारी वृत्तियों से मुक्त होता है तब अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। द्रष्टा की स्वरूप स्थिति ही आत्मानुभूति है। पुरूष का प्रकृति से वियोग ही योगदर्शन का ''तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'' है और यही योग है। इस योग की महत्ता बताये हुए भगवान श्री कृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैः–

तपस्वीभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

अर्थात् योगी तपसवियों से श्रेष्ठ है शास्त्र ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है और सकाम कर्म करने वालों सें भी श्रेष्ठ है इसलिए हे अर्जुन तू योगी बन।
योग विद्या के माध्यम से समत्व की अनुभूति होती है। समत्व योगानुभूति के पश्चात् निष्काम् कर्म करने की कर्म कुशलता विकसित होती है। यह कर्म कुशलता ही मुक्ति प्रदान करता है। प्रकृति और पुरूष का योग दो विजातीय तत्वो का योग है। यह योग नही वरन योगाध्यास है। योग पुरूष का प्रकृति से वियोग है। चित्तवृत्तियों का निरोध योग है। योग के परिणाम स्वरूप द्रष्टा अपने स्वरूप मे स्थित होता है। द्रष्टा की यह स्थिति ही योग का परम लक्ष्य है। इस लक्ष्य को सिद्धि के पश्चात् पुरूष प्रकृति से मुक्त होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। यही कैवल्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामचरित्रमानस् – गीताप्रेस गोरखपुर।
2. भगवतगीता– गीताप्रेस गोरखपुर।
3. मनुस्मृति – डॉ. उर्मिला रूस्तगी, जे.पी. पब्लिशिंग, हाउस, नई दिल्ली।
4. सांख्यकारिका–व्याख्याकार–डॉ. सुधांशु कुमार षड़ंगी, चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
5. पतंजलि दर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर।
6. योगमहाविज्ञान– डॉ. कामाख्याकुमार।
7. पातंजलयोगप्रदीप,स्वामी ओमानन्दतीर्थ, गीताप्रेस गोरखपुर।
8. पातंजलयोगसार डॉ. साधना दौनेरिया मधुलिका प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. भारतीय दर्शन– आलोचन तथा अनुशीलन, चंद्रधर शर्मा – मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली।